।। श्रीः ।।

विद्याभवन प्राच्यविद्या ग्रन्थमाला

१५५

स्वच्छन्दतन्त्रम्

(प्रथमो भागः)

(१-६ पटलानि)

श्रीमहामाहेश्वराचार्यवर्यश्रीक्षेमराजविरचित**स्वच्छन्दोद्योताख्य**-
व्याख्यानेन**ज्ञानवती**हिन्दीभाष्येण च विभूषितम्

व्याख्याकारः सम्पादकश्च

आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी

व्याकरणाचार्यः

एम० ए० (संस्कृत), पी-एच्०डी०, लब्धस्वर्णपदकः

शास्त्रचूडामणि विद्वान्

संस्कृतविभागः, कलासङ्कायः,

काशीहिन्दूविश्वविद्यालयः, वाराणसी

चौखम्बा विद्याभवन

वाराणसी

संक्षिप्त-परिचय

प्रथम पटल

इस पटल का शीर्षक 'मन्त्रोद्धारप्रकाशन' है । मुद्रापीठ, मण्डलपीठ, मन्त्रपीठ और विद्यापीठ वाले चतुष्पीठात्मक इस स्वच्छन्दतन्त्र में मन्त्र पीठों के विषय में कहा गया है—

'स्वच्छन्दभैरवश्चण्डः क्रोध उन्मत्तभैरवः।
ग्रन्थान्तराणि चत्वारि मन्त्रपीठं वरानने ॥' (स्व०तं०टी० १।१)

अर्थात् मन्त्रपीठ चार हैं—स्वच्छन्द भैरव, चण्ड भैरव, क्रोध भैरव और उन्मत्त भैरव । पटल के प्रारम्भ में उत्तम गुरु और उत्तम शिष्य के लक्षणों का वर्णन करने के साथ-साथ दुष्ट आचार्य और अयोग्य शिष्य की चर्चा की गयी है । अकार से लेकर क्षकार तक के पचास वर्णों को मातृका कहा जाता है । इनमें 'अ' से लेकर 'अः' तक सोलह स्वरों को 'भैरव' या 'बीज' तथा 'क' से लेकर 'क्ष' तक चौंतीस व्यञ्जनों को 'भैरवी' या 'योनि' कहा गया है । इनके द्वारा इनकी सात मातृका देवियों की पूजा करनी चाहिये । अघोरेश की पूजा अघोरमन्त्र के द्वारा की जानी चाहिये । यह पूजा अघोर के स्थूल रूप की होती है । विद्याङ्गों का वर्णन करते हुए इच्छा ज्ञान क्रिया नामक शक्तित्रय के मन्त्रों की चर्चा की गयी है । भैरव मन्त्र के साथ भैरवी के अङ्गवक्त्रों तथा भैरवाष्टक एवं लोकपालाष्टक के मन्त्रों के वर्णन के साथ प्रथमपटल का उपसंहार हुआ है ।

द्वितीय पटल

द्वितीय पटल का नाम 'अर्चाधिकार' पटल है शीर्षक के द्वारा ही इस पटल के विषय का सङ्केत मिलता है । इसमें शौच, प्राणायाम, अभिषेक, संध्या, भस्मस्नान आदि करने के बाद यागगृहप्रवेश, विघ्नप्रोच्चाटन, द्वारदेवता-पूजन, पुनः यागगृहप्रवेश, ब्राह्मणपूजन, न्यास करने का विधान बतलाया गया है । देहशुद्धि के लिये प्राणायाम, न्यासविधि के द्वारा इष्टदेवता का आवाहन, हृदययाग या आन्तर पूजा की चर्चा की गयी है । तत्पश्चात् आसन, न्यास, विद्यापद्म की दिशाओं में वामा ज्येष्ठा रौद्री आदि शक्तियों का तथा मध्य में मनोन्मनी नामक शक्ति के न्यास और ध्यान का उल्लेख है ।

सूर्य सोम और अग्नि के मण्डल तथा उनके अधिष्ठातृ ब्रह्मा, विष्णु और शिव के न्यास ध्यान के बाद मध्य में महाप्रेत भगवान् भैरव के स्थूलरूप का न्यास करे । आसन गन्ध आदि से उनकी पूजा के पश्चात् भगवान् के निष्कल स्वरूप का ध्यान आवाहन आदि करना चाहिये । इनके पूजन के बाद

अन्तर्याग का अनुष्ठान करना चाहिये । आवरण न्यास, वक्त्र न्यास के वर्णन के पश्चात् अघोरेशी, आठ भैरव, आठ लोकपाल का ध्यान करने की चर्चा की गयी है । ततः नाडीसन्धान, नैवेद्य, अर्घप्रदान, मुद्रानिवेदन आदि विषय वर्णित हैं । साथ ही अक्षमाला, जप का स्वरूप और जप का भेद भी बतलाया गया है ।

पूजन का वर्णन करने के बाद याग का वर्णन है । शक्तिन्यास, आठ श्मशानाधिपति का वर्णन कर उनके पूजन नमन की चर्चा, कुण्डसंस्कार, वागीशीपूजन, योनिमुद्राप्रदर्शन, अग्निजनन, अग्निस्थापन, उसका पूजन, अग्नि का गर्भाधान आदि संस्कार, उसकी अङ्गकल्पना, जातकर्म, सूतकशुद्धि, वक्त्र-शोधन आदि करने के बाद, वह्नि की रक्षा के लिये तत्तद् दिशाओं में देवता-न्यास करना चाहिये । इसके बाद शिवाग्नि का नामकरण, आज्यसंस्कार, वक्त्रसंस्कार, विविध काम्य होमों का वर्णन है । अग्नि के चूड़ाकरण आदि अवशिष्ट संस्कारों के लिये पूर्णाहुति देने के बाद यजन करना चाहिये । आगे चलकर भैरव की पूजा, नित्यहोम का वर्णन करने के बाद भिन्न-भिन्न उद्देश्य की पूर्त्ति के लिये भिन्न-भिन्न द्रव्यों, मुद्राओं एवं आहुतिपरिमाण की चर्चा के साथ इस पटल का उपसंहार किया गया है ।

तृतीय पटल

इस पटल का नाम 'अधिवास' पटल है । गुरु शुद्ध, सुष्ठु अलङ्कृत होकर द्वारदेवताओं की पूजा कर यागगृह में प्रवेश करे । वहाँ रक्षाविधान के बाद, अन्तर्याग करना चाहिये । इस याग को करने के बाद ही द्रव्ययाग करना चाहिये—

अकृत्वा मानसं यागं योऽन्ययागं समारभेत् ।
अशिवः स तु विज्ञेयो न मोक्षाय विधीयते ॥

अर्थात् मानसयाग न करने पर वह बाह्ययाग व्यर्थ हो जाता है । तत्पश्चात् भैरवमूर्त्ति का न्यास, उसका पूजन, अमृतीकरण, अर्घपात्रप्रकल्पन, शिवहस्त-विधि, मन्त्रसन्धान, नाडीसन्धान को क्रमश करने की आज्ञा दी गयी है । इसके बाद यागभूमि का शोधन, उसका मार्जन, लेपन, विकिरा का प्रयोग, शिवकुम्भ की परिकल्पना करनी चाहिये । कुम्भ में कलाओं अध्वाओं और भैरवों की स्थापना एवं प्राणप्रतिष्ठा करने के बाद उसका अर्चन और साथ ही बार्धानी की स्थापना और पूजा करनी चाहिये । इस अनुष्ठान के बाद इन्द्र आदि लोकपालों की पूजा, मण्डलनिर्माण, गुरु एवं गणेश की पूजा करनी चाहिये । उनकी आज्ञा से योगपीठ की रचना, इसमें मन्त्रसन्धान, नाड़ी-सन्धान, परमीकरण, नैवेद्यदान, मुद्राप्रदर्शन करने के बाद क्षेत्रपालबलि देनी

चाहिये । तत्पश्चात् आचार्य स्नान कर भस्मधारण एवं आचमन कर अग्निकुण्ड के पास जाकर भैरवपूजन, हवन चरुपाक, स्थाली में भैरव की स्थापना, पूजा, और चरुपाक करे । चरु का हवन, सम्पात होम, देवताओं के लिये होम कर भगवान् भैरव से शिष्य की अधिवासदीक्षा के लिये प्रार्थना होम करे ।

इसके लिये यज्ञमण्डप के द्वार पर मण्डल बना कर उसके ऊपर कुश का आसन रख कर शिष्य को उस पर बैठाये । पुनः उस शिष्य का संस्कार कर उसकी आँख पर पट्टी बाँधे और हाथ में पुष्प दे । शिष्य मन्त्र का उच्चारण करता हुआ पुष्पों को विखेर दे । फिर आचार्य शिष्य का हाथ पकड़ कर यवनिका के अन्दर स्थापित भैरव के सामने ले जाय और शिष्य के द्वारा पुष्प अर्पित कराने के बाद उसका मुख खोल कर सदाशिवसहित भैरव का दर्शन कराये । पुनः यहाँ मण्डल बना कर शिष्य को उसमें बैठा कर आचार्य उसके अशुद्ध देह को भस्म कर यौगिक विधि से उसमें मन्त्र, कला आदि की स्थापना के द्वारा उसको दिव्य देह प्रदान करे । तत्पश्चात् शिष्य के शिर पर शिवहस्त रख कर आचार्य उसे कुण्ड के समीप ले जाकर मण्डल पर बैठाये । फिर शिष्य के हाथ में कुश दे कर नाड़ीसन्धान करे । शिवहस्त में भैरव का ध्यान कर शिष्य का शिवहस्त से आलभन अर्थात् स्पर्श करे । सम्पातहोम मन्त्रदीप पाशच्छेदन आदि क्रियाओं को सम्पन्न करने के बाद आचार्य शिष्य के हाथ में पुष्प देकर स्थण्डिल शिवकुम्भ शिवाग्नि का पूजन तथा दण्डवत् प्रणिपात कराये । पुनः पञ्चगव्यप्रदान के बाद आचार्य अनुष्ठान में न्यूनाधिक्यदोष के परिहार के लिये प्रायश्चित्त होम करे ।

विशेषपूजन, अर्घदान, मुद्राबन्ध, स्तुतिपाठ, वाद्य, चरुभोजन करने के बाद देवता का विसर्जन करना चाहिये । शिवकुम्भ पर से माला हटाकर कलश का पूजन फिर गोमय का स्पर्श करे । शिवकुम्भ से प्रोक्षण करने के बाद शिष्य के लिये शय्या की व्यवस्था करे । शय्या पर स्थित शिष्य का शिखाबन्धन तथा रक्षा कर उसे सुला दे और आचार्य स्वयं मण्डप के बाहर जाकर बलिकर्म करे । बाद में पञ्चगव्य पान कर या तो शिष्यों के साथ सो जाय या जागरण करते हुए भैरव का ध्यान करे । इस प्रकार गुरु और शिष्य का यागमण्डप में अधिवास का अनुष्ठान पूर्ण होता है ।

चतुर्थ पटल

चतुर्थ पटल का नाम 'दीक्षा-अभिषेक' पटल है । इसमें कलादीक्षा की साङ्गोपाङ्ग चर्चा विहित है । रात्रि बीतने पर आचार्य शौच आदि करने के बाद सकलीकरण कर यागमण्डप में प्रवेश करे । शिष्य भी हाथ में पुष्प लेकर आचार्य के सम्मुख उपस्थित हो रात्रि में दृष्ट स्वप्नों का वर्णन करे ।

मदिरापान विष्ठा आदि का लेपन, दही भात खाना आदि, सूर्योदय, समुद्रनदी आदि कासं तरण आदि देखना शुभ स्वप्न होते हैं। तैलाभ्यङ्ग, तैलपान, दाँत एवं केश का गिरना विवाह देखना आदि अशुभ स्वप्न माने गये हैं। अशुभ स्वप्नों को देखने के बाद तत्संसूचित दुष्टफल की शान्ति के लिये होम करना चाहिये। तत्पश्चात् सकलीकरण, विघ्नोच्चाटन, शिवकुम्भस्थापन शिव-हस्त, लोकपालपूजा आदि करने के बाद साधक शिव का विसर्जन करे। इसके बाद नित्य नैमित्तिक कर्म करे। यहाँ भी मण्डलनिर्माण आदि पूर्व की भाँति करना होता है। नैमित्तिक कर्म में भी सकलीकरण आदि अनुष्ठान करना पड़ता है। तत्पश्चात् मण्डल का संस्कार कर आचार्य उसमें प्रवेश कर गुरु तथा अनन्त आदि का पूजन करे। बाद में नाड़ीसन्धान, तर्पण, पूर्णाहुति आदि कर आचार्य शिष्य के देह में सकलीकरण, आसन, मण्डलकल्पना, मन्त्रसन्धान, शिवहस्तक्रिया का सम्पादन करे। तत्पश्चात् आचार्य शिष्य का नामकरण कर प्रणिपात प्रदक्षिणा आदि के पश्चात् हवन कराये। इसके बाद शिष्य की आँख को वस्त्राच्छादित कर उसके हाथ में पुष्प देकर मण्डल में प्रवेश करे। फिर अग्निकुण्ड के समीप शिष्य का नाडीसन्धान, पूर्णाहुति प्रायश्चित्त होम आदि करे। इस प्रकार शिष्य की बीजशुद्धि होती है। इसके पश्चात् होम आदि के द्वारा शिष्य का रुद्रांशापादन करे। इस प्रकार शिष्य की समयी नामक पहली दीक्षा सम्पन्न होती है।

दीक्षा के सन्दर्भ में अध्वशुद्धि के लिये सूक्ष्म विधान करना चाहिये। यह दीक्षा पुत्रक और साधक भेद से दो प्रकार की होती है। शिष्य भी दो प्रकार के होते हैं—भोगेच्छु ओर मोक्षेच्छु। इसको लोकधर्मी और शिवधर्मी भी कहते हैं। शिवधर्मी या मुमुक्षु भी दो प्रकार का होता है निर्बीज और सबीज। बालक, मूर्ख, वृद्ध स्त्री, रोगी आदि की नियम आदि से रहित निर्बीज दीक्षा होती है। जो विद्वान् हैं और व्रतचर्या आदि का पालन करने में समर्थ हैं उनकी सबीज दीक्षा होती है। इन चार प्रकार की दीक्षाओं में से पहले पुत्रक दीक्षा विधान के सन्दर्भ में षडध्व शुद्धि पर प्रकाश डाला गया है। इसमें पाशशुद्धि के लिये अध्वसन्धि में होम, व्याप्यव्यापक भाव से अध्वा का अवलोकन, अध्वन्यास, वागीश्वरी का सन्निधापन उसका पूजन, निष्कृतिहोम, वागीशीजन्म, उसके ४८ संस्कार, उसका रुद्रांशापादन, जीव का भोग से विश्लेष आदि विषयों को बतलाया गया है। शुद्ध चैतन्य का शिष्य देह में प्रवेश, उसका तत्स्थीकरण, वागीशीपूजन-विसर्जन करना चाहिये। शिवधर्मिणी दीक्षा को बतलाने के बाद लोकधर्मिणी दीक्षा, सबीज दीक्षा, सद्योनिर्वाणदा दीक्षा, निवृत्ति प्रतिष्ठा आदि कला का सन्धान, कलाव्याप्ति, वागीशीध्यान, अधिकार, भोग, लय, निष्कृति, पाशच्छेद, तर्पण, वागीशी विसर्जन, षडध्व रूपपाश का शोधन, क्षमापन, त्रितत्त्व की शुद्धि, शिष्य का शिखाच्छेदन,

होम, स्नान, शिवहस्त का पूजन प्रभृति का वर्णन कर आचार्य द्वारा योजनिका अनुष्ठान के लिये भगवान् से प्रार्थना करने की बात कही गयी है ।

योजनिका-कर्म हेतु पूर्व की भाँति पहले सकलीकरण आदि करे। तत्पश्चात् चारप्रमाण, प्राणसञ्चार, षडध्वविभाग, षडध्व की प्राण में स्थिति, मन्त्रैकादशिका एवं पदैकादशिका की प्राण में स्थिति तथा हंसोच्चार को बतलाते हुए व्यापिनी समना के त्याग के बाद उन्मना में प्रवेश कर शिवतत्त्व को प्राप्त करना चाहिये—यह कहा गया । उसके बाद हंसोच्चार, वर्णोच्चार, कारणत्याग कालत्याग, शून्यभावना, षट्शून्यत्याग, सप्तसामरस्य का ज्ञान, सभेदविषुवत्, पदार्थभेदन, हंसयोग तथा मात्रासंख्या की चर्चा की गयी है। तत्पश्चात् शरीर में हंसमात्रा का परिमाण, मात्रा की संख्या, मात्रा का योग, कारणलक्षण, ग्रन्थिभेदन, आत्मव्याप्ति, शिवव्याप्ति और तत्त्वव्याप्ति का वर्णन किया गया है। इसके अन्त में आचार्य में शिवभावना तथा पूर्णाहुति को बतलाते हुए समनापर्यन्त पाशजाल की स्थिति कही गयी है । मानस व्यापार के ऊपर बोधरूप होने पर शिष्य शिव हो जाता है । यहाँ होम करना पड़ता है । इसके अनन्तर शिष्य शिवाग्नि आदि की प्रदक्षिणा कर कृतकृत्य हो जाता है । उसके अन्दर सर्वज्ञता आदि छ: गुणों का आविर्भाव होने से वह शिव हो जाता है ।

निर्वाणदीक्षा दो प्रकार की होती है—सबीजा और निर्बीजा । सबीजदीक्षादीक्ष्य का अभिषेक होता है । इस सन्दर्भ में भैरवपूजन, कलापूजन आसन और मण्डल की कल्पना आदि करने के बाद आचार्य शिष्य को नूतन वस्त्र पहना कर योगपीठ की रचना कर शिष्य को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित होने का अधिकार देता है कि 'आज से तुम शिव की आज्ञा से लोगों को दीक्षा देने के अधिकारी हो गये हो ।' साथ ही आचार्य स्वच्छन्दभैरव से शिष्य के अधिकार की योग्यता एवं सफलता के लिये प्रार्थना करता है । अभिषेक के बाद प्रणाम के अनन्तर शिष्य की सबीज दीक्षा पूर्ण होती है । इसी प्रकार भूतिदीक्षा विद्यादीक्षा की भी इस पटल में चर्चा की गयी है । दीक्षा के बाद आत्मयाग करने की बात कही गयी है । आत्मदीक्षा दो प्रकार की होती है— वैज्ञानिकी और प्राकृती । प्राकृती दीक्षा में पूजा होम आदि करना पड़ता है । वैज्ञानिकी उससे भिन्न है । इसमें समस्त कार्य सूक्ष्मरूप से सम्पादित किये जाते हैं । आत्मदीक्षा के बाद विशेष पूजन अर्घदान साष्टाङ्गप्रणाम के बाद विसर्जनविधि का वर्णन करते हुए क्षमापन बलिकर्म गुरुपूजा का वर्णन किया गया है । अन्त में यह बतलाया गया है कि शिवदीक्षादीक्षित व्यक्ति की पूर्वजाति नहीं रह जाती । पूर्व में चाहे वह किसी भी जाति का हो दीक्षासम्पन्न होने के बाद उसकी केवल भैरवीय जाति ही होती है । पूर्व जाति की चर्चा करने वाला चिरकाल तक नरकगामी और प्रायश्चित्ती होता है ।

पञ्चम पटल

इस पटल का शीर्षक 'तत्त्वादिदीक्षा' पटल है । इसमें छत्तीस मुख्य तत्त्वों का शोधन बतलाया गया है । विद्याराज के नववर्ण (= ह्, र्, क्ष्, म्, ल्, व्, य्, ऊ, म्) समस्त तत्त्वों के वाचक हैं । जैसे पृथिवी से लेकर प्रकृति तत्त्व तक का वाचक ऊकार है । 'म्' शक्ति का वाचक है । इसी 'म्' के द्वारा व्यापिनी समना का भी शोधन होता है । इसके बाद आत्मा को परतत्त्व उन्मना से जोड़ दिया जाता है । यह तत्त्वदीक्षा छत्तीस, नव, तीन और एक तत्त्व के शोधन की दृष्टि से चार प्रकार की होती है । तत्त्व दीक्षा के बाद पद दीक्षा की विधि बतलायी गयी है । इसमें नवनाभ मण्डल का उद्धार करना पड़ता है । नवनाभ मण्डल की रचना नवकमलों में होती है । यह नवनाभ पुर आठ द्वारों वाला होता है । इसके अनुष्ठान में सकलीकरण, पूजन आदि पूर्व की भाँति किया जाता है । भैरव का पूजन मण्डल के मध्य में होता है । उन तत्त्वों तथा तत्त्वाधिष्ठातृ देवताओं का न्यास करने के बाद सबको संहार क्रम से शिवतत्त्व में संयुक्त किया जाता है । शोधन अर्थात् तत्त्व दीक्षा के बाद आचार्य के द्वारा शिष्य को नियमों का ज्ञान कराया जाता है । इसमें किसी शास्त्र, धर्म आदि की निन्दा न करने, गुरु का अन्न न खाने आदि का उपदेश होता है.। समयश्रावण के पश्चात् विज्ञानदीक्षा की चर्चा की गयी है । इसमें पाँच उद्घात तथा उनके द्वारा शिष्याध्वा का शोधन अर्थात् पञ्चतत्त्व का शोधन करने के बाद एक उद्घात से शिष्यात्मा का परतत्त्व से संयोजन बतलाया गया है । इस क्रम में पृथिव्यादि चार तत्त्वों के शोधन के बाद अन्तिम एक उद्घात के द्वारा शून्य अर्थात् व्यापिनी का शोधन कर समना के बाद उन्मना में शिष्यात्मा का योजन होता है । यहाँ संयुक्त होने पर शिष्य परमशान्ति को प्राप्त करता है ।

यह सम्प्रदाय गुरुपरम्परा से प्राप्त होता है । (अत्यन्त खेद का विषय है कि वर्त्तमान समय में यह परम्परा उच्छिन्न हो गयी है) । वर्ण मन्त्र पद एवं कला तत्त्व भुवन इन छहों अध्वाओं के शोधन में ज्ञानदीक्षा का प्रयोग होता है। यह शोधन धारणा दीक्षा के नाम से जाना जाता है । इस सन्दर्भ में टीकाकार आचार्य क्षेमराज ने बौद्धों के मत का उपस्थापन कर उनका खण्डन एवं तान्त्रिक मत का मण्डन किया है । योगी को चाहिये कि वह इस धारणा दीक्षा का अभ्यास करे क्योंकि ऐसा करने से उसे परमशान्ति मिलती है ।

षष्ठ पटल

इस पटल को 'पञ्चप्रणवाधिकार' पटल की संज्ञा दी गयी है । समयी साधक को अनेक सिद्धियाँ मिलती हैं । प्रथमपटल में निर्दिष्ट बहुरूप मन्त्र को

पाँच प्रणवों से संयुक्त कर इस मन्त्र में जितने अक्षर (= बत्तीस अक्षर) हैं उतने लाख जप करना चाहिये । इसके लिये सब प्रकार से शुद्ध एकान्त गुफा उत्तम स्थान है । प्रणव को ह्रस्व दीर्घ प्लुत सूक्ष्म अतिसूक्ष्म भेद से पाँच प्रकार का बतलाया गया है । यह प्रणव 'हंस' से युक्त है । इस प्रणव का विस्तारपूर्वक वर्णन करने के समय षष्ठ स्वर (= ऊकार) पर विशेष दृष्टि डाली गयी है । ह्रस्व उकार एवं दीर्घ ऊकार को उस महाविमर्शात्मक परतत्त्व का गुण माना गया है । परतत्त्व (= शिव) के सकल या सगुण तथा निष्कल या निर्गुण दोनों रूप षष्ठस्वर से युक्त हैं । यह पञ्चप्रणव वाचक और वाच्य दो रूपों वाला है । अ उ म् बिन्दु और नाद ये वाचक पञ्च प्रणव हैं । ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव ये वाच्य पञ्चप्रणव हैं । बहुरूप मन्त्र के जप और उसके दशांश हवन का अनुष्ठान करने से साधक को परतत्त्व का बोध हो जाता है और वह अहिकञ्चुकवत् संसार से मुक्त हो जाता है ।

होम के लिये घटक द्रव्यों का वर्णन कर इस जप होम के फल का वर्णन किया गया है । वशीकरण के अनेक घटक द्रव्यों को बतलाने के साथ-साथ उच्चाटन विद्वेषण, सुभगीकरण मारण प्रयोगों को बतलाते हुए अन्त में शान्तिकर्म की भी चर्चा की गयी है ।

सप्तम पटल

इस पटल का नाम 'कालाधिकार' पटल है । काल दो प्रकार का है— सौर और आध्यात्म । सौरकाल प्रसिद्ध है अत: उसका दक्षिणायन, उत्तरायण, पक्ष, मास, वेला नाम लेकर परिचय कराने के बाद इस पटल में आध्यात्म काल का विस्तृत वर्णन किया गया है । इस षाट्कोशिक शरीर में असंख्य नाड़ियाँ फैली हुई हैं जिनमें प्राणवायु सञ्चरण करता रहता है । इन नाडियों में इड़ा, पिङ्गला, सुषुम्ना, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलम्बुसा, कुहू और शंखिनी ये दश प्रधान नाड़ियाँ हैं । प्राणवायु भी अपने व्यापार की दृष्टि से दश प्रकार के हैं । प्रस्तुत पटल में इसको विस्तार से बताने के बाद क्षण, तुटि एवं याम आदि जो कि प्राणचार के आधार पर निश्चित होते हैं, का विवरण प्रस्तुत है । इसी में चन्द्र, सूर्य आदि नक्षत्र, ग्रह, राशियाँ तथा प्रात: सायं आदि काल की भी स्थिति बतलायी गयी है । यह बाह्यकाल शरीर के भिन्न-भिन्न अङ्गों में स्थित होता है । पक्ष, मास, वर्ष, दशाब्द, शताब्द यहाँ तक कि युगों की भी स्थिति योगी को प्राणचार में अनुभूत होती है । प्राणचार के सिद्ध हो जाने पर योगी जन्म-मृत्यु को जीत लेता है और अपने साथ-साथ दूसरे के जीवनकाल का भी ज्ञान उसे हो जाता है । इड़ा आदि तीन मुख्य नाडियों में प्राणचार की साधना के परिपक्व हो जाने पर वह ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, वामा, ज्येष्ठा, रौद्री आदि सबको जान लेता है । योगी

इस योग के बल से अपनी तथा दूसरे की मृत्यु, रोग, सम्पत्तिनाश तथा आदर सम्मान राज्यलाभ आदि का ज्ञान कर लेता तथा अशुभों पर विजय प्राप्त कर लेता है । आध्यात्मिक काल को जीतने वाला योगी नाना प्रकार की सिद्धियों को प्राप्त करने के साथ-साथ यदि परमतत्त्व के ध्यान में तत्पर रहता है तो हस्तगत मोक्ष प्राप्त कर लेता है ।

आगे चलकर यह बतलाया गया कि परतत्त्व का ज्ञान ही मोक्ष है । इसी क्रम में पञ्चपञ्चक का वर्णन किया गया है । अहङ्कार आदि अट्ठारह गुणों से युक्त उन्मना नामक परतत्त्व पञ्चपञ्चक में रहता है । ऐसा तत्त्वज्ञाता जीवन्मुक्त हो जाता है । उसके अन्दर सर्वज्ञता आदि छः गुण आ जाते हैं । वह कालजयी होकर स्वच्छन्दभैरव के समान हो जाता है । इसके बाद अयोगी के वे लक्षण बतलाये गये हैं जिनके प्रकट होने पर अयोगी की शीघ्र मृत्यु हो जाती है । साथ ही ऐसे अरिष्टों की शान्ति के उपाय भी बतलाये गये हैं । योगाभ्यास की विधि तथा उसका फल बतलाने के बाद नाग आदि दश वायुओं के कार्य बतलाये गये हैं । जो योगी इन वायुओं का निरोध कर लेता है, शरीर के तत्तत् संस्थानों में निरोध होने पर उस योगी के शरीर में तत्तत् लक्षण प्रकट होने लगते हैं । उन्मनापर्यन्त समस्त द्वारों का उद्‌घाटन करने के बाद योगी स्वच्छन्द के समान हो जाता है । उसके अन्दर परकायप्रवेश की क्षमता, क्षुत्तृषा का नाश, त्रैलोक्य का सार्वकालिक प्रत्यक्ष तथा सर्वज्ञता आदि गुण उत्पन्न हो जाते हैं ।

अष्टम पटल

अष्टम पटल को 'अंशकाधिकार' पटल कहा गया है । परबोधभैरव की ब्राह्मी आदि शक्तियों के द्वारा अल्पांशतया अवभासित ब्रह्मा आदि अंशक कहे जाते हैं । भावांश, स्वभावांश, पुष्पपातांश, मन्त्रांश तथा दो प्रकार का अंशकापादन ये छः प्रकार के अंशक होते हैं । देवानुस्मरण को भावांश, लिङ्गार्चन आदि व्यापार को स्वभावांश कहते हैं । यह ब्रह्मांश आदि नाम वाला होता है । वेदभक्त आदि को ब्रह्मांश आदि कहते हैं । पुष्पपातवश नामकरण को पुष्पपातांश एवं मन्त्राराधक को मन्त्रांश कहते हैं । नरमांस का होम करने वाला तथा वीरद्रव्य के प्रयोग के अयोग्य व्यक्ति ये दोनों अंशकापादन हैं । मन्त्रांशक हीन मध्यम सिद्ध और सुसिद्ध चार प्रकार के होते हैं । इनकी साधनाविधि बतलाने के बाद यह कहा गया कि मन्त्रों के वर्णों में चैतन्य का आविर्भाव होने पर वे भोग और मोक्ष दोनों के प्रदाता बन जाते हैं । इसके बाद मन्त्रावतार का क्रम बतलाया गया है । इसके बाद तन्त्रावतार का क्रम बतलाते हुए कहा गया कि परम कारण शिव से यह तन्त्र मनुष्य तक अवतीर्ण हुआ । परमशिव से सदाशिव उनसे ईश्वर ईश्वर से विद्येश्वर उनसे

श्रीकण्ठ उनसे देवताओं, ऋषियों तथा देवताओं से और फिर मनुष्यों के बीच यह तन्त्र प्रचलित हुआ । अन्त में परमेश्वर पार्वती को कहते हैं कि तुम भी इस गुप्ततन्त्र को ऋषियों और मनुष्यों में वितरित करो ।

नवम पटल

इस पटल को 'कोटराक्षाद्याधिकार' पटल कहा जा सकता है । भगवान् स्वच्छन्दभैरव के हृदय से एक तेजोमय रूप प्रकट हुआ जो भिन्नाञ्जन के समूह जैसा कृष्णवर्ण का तथा नाना अलङ्कारों से अलङ्कृत था । उनका नाम कोटराक्ष हुआ । इनकी आराधना का मन्त्र भी स्वच्छन्दमन्त्र ही है । क्योंकि वे स्वच्छन्दभैरव स्वरूप हैं । शुद्धभूमि में विशिष्ट मण्डल बनाकर साधक कोटराक्ष की मूर्त्ति की स्थापना कर अर्घ आदि से उनका पूजन करे । भैरवमन्त्र के बत्तीस अक्षरों के द्वारा कमल पर अरुणा आदि बत्तीस देवियों का आवाहन पूजन आदि करना चाहिये । तत्पश्चात् दश दिक्पालों के पूजन का विधान है । ध्यान और पूजन के बाद जप के योग्य महेन्द्र मलय आदि आठ पर्वतों एवं अन्य क्षेत्रों का वर्णन किया गया है । मन्त्र के सिद्ध होने पर साधक कालाग्नि भुवन से लेकर सदाशिव पर्यन्त समस्त लोकों को वश में कर लेता है । यह बत्तीस देवताचक्र परिवार के साथ कोटराक्ष की उपासना है ।

उक्त परिवार से रहित एकवीर उपासना भी पूर्वोक्त विधि से की जाती है । साधक इस उपासना से यथेच्छ फल प्राप्त करता है । इसके बाद इस पटल में रक्षाविधान का वर्णन है । इसमें बत्तीस अरों वाला चक्र बनाकर उसमें साध्य का नाम लिखकर अन्य अनुष्ठानों को करने से मृत्यु के मुख में गया हुआ व्यक्ति भी जीवित हो उठता है । यहाँ मृत्युरक्षा के अनेक अनुष्ठानोपाय बतलाये गये हैं । रक्षा के अतिरिक्त मारण के लिये क्रोधराज प्रयोग शत्रुत्रास के लिये विकराल प्रयोग, वशीकार के लिये मन्मथ प्रयोग तथा अन्यान्य उद्देश्यों की पूर्त्ति के लिये अन्य अनेक प्रयोगों का वर्णन है । एक बार फिर अनेक मृत्युञ्जयविधि का वर्णन करते हुए शान्तिकर्म, गुटिकासिद्धि, विषादिमृत्यु के निवारण के उपाय बतलाये गये हैं । अन्त में जो लोग ध्यान करने में सक्षम नहीं हैं उनके लिये विषनिवारण के ओषधीय उपचार बतला कर यह सङ्केत किया गया कि इस पटल में विषशमनार्थ उक्त विधि के अतिरिक्त अन्य उपाय भी हैं । सिद्ध पुरुष उनका भी प्रयोग कर सकता है ।

दशम पटल

इस पटल को 'भुवनाध्वदीक्षाधिकार' पटल कहा गया है । इसमें ब्रह्माण्ड सहित समस्त तत्त्वों एवं उनके अधिष्ठातृदेवों का वर्णन है । यह ब्रह्माण्ड जैसे दो कड़ाहे उल्टे-सीधे रखकर बन्द कर दिये जाँय उस प्रकार के कर्पर के

समान है। इसमें सबसे नीचे कालाग्निरुद्र भुवन है । उसके ऊपर निन्यानवे करोड़ अर्थात् अनन्त संख्या वाले भुवन हैं । इन भुवनों का परिमाण बतलाने के लिये इस पटल में परमाणु से लेकर योजन तक के परिमाण का स्वरूप बतलाया गया है । कालाग्निरुद्र भुवन के अधिपति कालाग्नि रुद्र हैं । ये सपरिवार, जिस सिंहासन पर विराजमान हैं वह दो हजार योजन चौड़ा और एक हजार योजन ऊँचा है । कालाग्निरुद्र भुवन के ऊपर पचास करोड़ नरक हैं। इनमें वैतरणी कुम्भीपाक आदि १४० नरक प्रधान हैं । ये त्रिकोणाकार और अत्यन्त भयानक हैं । जो लोग पापी तथा असत्कर्म करने वाले हैं वे इन नरकों में जाते हैं । इन १४० नरकों में मुख्य पैंतीस हैं । चूँकि इनमें से एक-एक नरक के चार-चार भेद हैं इसलिये मुख्य नरक (३५×४ =) १४० हैं । इन पैंतीस नरकों का शोधन करने से पचास करोड़ नरकों का शोधन हो जाता है । इन नरकों का विस्तार बत्तीस करोड़ योजन है । इनके अधिपति कुष्माण्ड हैं जो इन नरकों के ऊपर स्थित हैं ।

इन नरकों के ऊपर पाताल हैं । मुख्य पाताल आभास वरताल आदि आठ हैं । इनकी एक-एक की ऊँचाई नौ हजार योजन है और एक से दूसरे की दूरी एक हजार योजन है । इस प्रकार इनका विस्तार अस्सी हजार योजन हैं । ये सब छत्र के आकार के हैं । जो लोग शिवाराधक हैं वे समस्त ऐश्वर्ययुक्त इन पातालों में सुन्दरियों के साथ रमण करते रहते हैं । सौवर्ण नामक अष्टम पाताल में इन पातालों के हाटक नामक स्वामी विराजमान हैं ।

पाताल के ऊपर बीस हजार योजन विस्तृत भूकटाह है । इस भगवती पृथिवी के मध्य में सुवर्णमय महामेरु पर्वत स्थित है । इस पर्वत के ऊपर मनोवती नगरी है । इसके चारों ओर ऊपर नीचे तत्तद् देवताओं के नगर हैं जिनमें समस्त ऐश्वर्यसम्पन्न दिव्य जीव निवास करते हैं । इष्ट पूर्त्त से पवित्रित शिवार्चनरत धर्मात्मा जीव यहाँ पहुँचते हैं । यहाँ गङ्गा नदी निरन्तर प्रवहमान हैं । गङ्गानदी की उत्पत्ति के विषय में इस पटल में कहा गया है कि—

एक बार क्रीडानिरत पार्वती ने शिव के नेत्रों को अपनी अङ्गुलियों से ढँक लिया । बाद में जब शिव के नेत्र उद्घाटित हुए तो उनमें से जो अश्रुधारा निकली वही गङ्गा नदी हैं । चूँकि शिववक्त्र पार्वती की दशो अङ्गुलियों से ढँका था इसलिये गङ्गा दश स्रोतों में प्रवाहित हुई । उनमें से सात धारायें उनके कपालआवरण में रुक गयी और तीन में से एक विष्णुपुर, दूसरी ब्रह्मलोक और तीसरी सत्यलोक में चली गयी । देवताओं की प्रार्थना पर शिव ने गङ्गा को उत्सृष्ट किया और वह पर्वतों पर होती हुई समुद्र में मिल गयी । गङ्गा के वर्णन के बाद मन्दर गन्धमादन आदि पर्वतों, चित्ररथ वन, मानसरोवर के साथ जम्बूद्वीप का वर्णन है । मेरु और समुद्र के बीच

मेरु के चारो ओर निषध आदि नव पर्वत हैं । जम्बूद्वीप में केतुमाल, इलावृत भारत आदि देश हैं । ये देश तडाग, वन उपवन आदि से समृद्ध हैं । जम्बूद्वीप की भाँति कुमारी द्वीप, मलय द्वीप आदि अन्य द्वीप इस धराधाम पर विराजमान हैं । उनमें भी अनेक देश हैं । तत्तद् देशों के नाम के साथ प्रत्येक देश के अधिपति उनके ऐश्वर्य, प्राकृतिक सम्पदा आहार विहार आदि का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है ।

मेरु और लोकालोक पर्वतों के बीच उत्तरायण दक्षिणायन, देवमार्ग, पितृमार्ग आदि का वर्णन कर कहा गया कि पृथिवी का विस्तार एक-सौ करोड़ योजन है । इस भूर्लोक में स्थित भुवनों का शोधन कलादीक्षाप्रकरण में उक्त संस्कारों के द्वारा करना चाहिये । इससे कालाग्नि नरक पाताल और भूर्लोकस्थ अनन्त भुवनों का शोधन हो जाता है ।

कालाग्निरुद्र भुवन से लेकर भूर्लोकस्थ भुवनों का शोधन बतलाने के बाद यह बतलाया गया कि पशु का छेदन आदि करना चाहिये । पशु का चतुर्दश योनि का संहारक्रम से शोधन करना चाहिये । इसके बाद गर्भाधान आदि अड़तालीस संस्कारों का वर्णन करते हुए यह बतलाया गया कि इन संस्कारों से पशु की शुद्धि होती है ।

भुवर्लोक का वर्णन करते हुए कहा गया कि भूपृष्ठ से सूर्यपर्यन्त एक लाख योजन विस्तृत भुवर्लोक है । इसमें दश-दश हजार योजन विस्तार वाले दश वायुमार्ग हैं । एक-एक वायुपथ में नाना प्रकार के मेघ हैं जो जल के साथ मत्स्य उपल रोगोदक आदि की वर्षा करते हैं । इन दशों वायुपथों में कहीं-कहीं स्कन्द के अनुचर विनायक, अधम विद्याधर, अप्सरायें, महात्मा, सिद्धपुरुष, गन्धर्व, अग्निकन्यायें आदि रहते हैं । पञ्चम वायुपथ में ऐरावत आदि आठ हाथी, षष्ठ में गरुड, सप्तम में आकाशगङ्गा, अष्टम में नन्दी, नवम में दक्ष प्रजापति और दशम वायुपथ में आठों वसु ग्यारह रुद्र और द्वादश आदित्य रहते हैं । ये आदित्य और कोई नहीं परमेश्वर की परा ज्ञानशक्ति है जो इस रूप में सन्ताप उत्पन्न करती हैं । इसी प्रकार उनकी परा क्रियाशक्ति चन्द्ररूप से देदीप्यमान है । इन दोनों के ऊपर मङ्गल आदि ग्रह, और उनके ऊपर सप्तर्षि रहते हैं । उनसे एक लाख योजन ऊपर ध्रुवनक्षत्र मण्डल है।

आदित्य के बाद ध्रुवलोक तक स्वर्ग कहा गया है । इसके राजा इन्द्र हैं। स्वर्गलोक से २८५००००० योजन ऊपर महर्लोक, उससे आठ करोड़ योजन ऊपर जनलोक और उससे बारह करोड़ योजन ऊपर तपोलोक है। तपोलोक से सोलह करोड़ योजन ऊपर सत्यलोक हैं । यहाँ ब्रह्मा, चारो वेद, उपनिषद्, पुराण आदि तथा गायत्री स्थित है । ब्रह्मपुरी से दो करोड़ योजन ऊपर

विष्णुपुरी उससे सात करोड़ योजन ऊपर रुद्रपुरी है । इन पुरियों की समृद्धि का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है । रुद्र की गोद में उमा विराजमान हैं । वे दोनों शिव की इच्छा से सृष्टि और संहार करते रहते हैं । रुद्रलोक के ऊपर दण्डपाणि का पुर है । ध्यान करने पर यही मोक्षमार्ग का उद्घाटन करते हैं । दण्डपाणि लोक की दशों दिशाओं में दश-दश रुद्र रहते हैं । इनको शतरुद्र कहा जाता है । इनका परिवार एक-एक हजार सदस्यों वाला है। ये सब रुद्र ब्रह्माण्ड में उसी तरह व्याप्त हैं । जैसे मधुमक्खी के छत्ते में मधुमक्खियाँ ।

पृथ्वी तत्त्व से दश-दश गुना योजन ऊपर जल तेज वायु आकाश गुण और अहङ्कारतत्त्व स्थित हैं । बुद्धितत्त्व सौ गुना, प्रधान हजार गुना, पुरुष दश हजार, नियति एक लाख, कला दशलाख, माया एक करोड़, शुद्धविद्या दश करोड़, ईश्वरतत्त्व सौ करोड़, सदाशिवतत्त्व एक हजार करोड़, शक्ति दश हजार करोड़ और व्यापिनीतत्त्व समस्त अध्वा को व्याप्त कर स्थित है । शिव तत्त्व अप्रमेय हैं । इस प्रकार ब्रह्माण्डान्तर्गत भुवनों की संख्या नहीं है ।

ब्रह्माण्ड के ऊपर ग्यारह रुद्रों का पुर है । उसके ऊपर भगवती भद्रकाली का पुर है । समस्त समृद्धि से सम्पन्न एवं दिव्य स्त्रियों से युक्त भगवती भद्रकाली यहाँ रहती हैं । इसी ने महिषासुर का वध किया था । यह भुवन जय के नाम से विख्यात है । निर्बीजदीक्षादीक्षित मुक्त पुरुष इस लोक को प्राप्त होते हैं । जयलोक के ऊपर विजय नामक भुवन है । इसमे एकादश रुद्र रहते हैं । यहाँ के अधिष्ठाता रुद्र वीरभद्र हैं । इसके ऊपर जलीय आवरण है । इसको रुद्राण्ड कहते हैं । इसके भीतर भगवती पृथिवी स्थिति है। यह सब दिशाओं में पर्वतों से घिरी है । गङ्गा भी यहाँ है ।

इस आवरण के ऊपर श्रीनिकेत अथवा पद्मगर्भ नाम से प्रसिद्ध भुवन है । इसमें भगवती महालक्ष्मी रहती हैं । भगवान् विष्णु ने तपस्या कर इनको प्राप्त किया था । यह लक्ष्मी अपने अंश-अंश से सर्वत्र व्याप्त हैं । श्रीपुर के ऊपर सारस्वत लोक है । यहाँ मानस गन्धर्व स्त्रियों से आवृत भगवती सरस्वती रहती हैं । यह भी अंशांशिका रूप से सर्वत्र विराजमान हैं । जलतत्त्व के ऊपर तेजस्तत्त्व है । यहाँ अग्नि भुवन है । इसके बीच में भगवान् शिवाग्नि रहते हैं । ये सूर्य के जनक हैं । अग्नि भुवन के ऊपर वायु तत्त्व का आवरण है । इसके मध्य भगवान् वायु रहते हैं । मारुत नाम वाले देव इनकी उपासना करते रहते हैं । इस तत्त्व के बाहर आकाश तत्त्व व्याप्त है । इसमें रुद्र रहते हैं । आकाश के ऊपर और अहङ्कार के नीचे असंख्य भुवन हैं । इसके ऊपर क्रमशः रस रूप स्पर्श शब्द और पञ्च तन्मात्राओं का मण्डल है। उसके ऊपर क्रमशः सूर्य, सोम और वेद मण्डल हैं । पञ्चतन्मात्रायें एवं सूर्य,

सोम, वेद ये आठ परमेश्वर की परा शरीर हैं ।

सूर्य सोम और वेदमण्डल के ऊपर करण मण्डल है । इसमें पाँच अधिपति रहते हैं । इसी प्रकार उत्तरोत्तर अहङ्कार मण्डल और बुद्धि मण्डल है। उनके ऊपर क्रमशः पैशाच, राक्षस, याक्ष, गान्धर्व, ऐन्द्र, सौम्य, प्राजेश और ब्राह्म नामक आठ भुवन हैं । साधक को इन सब का मन्त्रों के द्वारा शोधन करना पड़ता है । पञ्चाष्टक आदि का शोधन करने के बाद क्रोधाष्टक एवं योगाष्टक का शोधन करना चाहिये । योगाष्टक के ऊपर जगन्माता भगवती उमा स्थित हैं । औम नामक रुद्र इनकी उपासना करते रहते हैं । यही दक्षयज्ञ में भद्रकाली के नाम से उत्पन्न हुई । कात्यायनी दुर्गा आदि इन्हीं के नाम हैं ।

उपर्युक्त आठ भुवनों के ऊपर सुचारु नामक भुवन है । जिसमें जगन्नाथ उमापति रहते हैं । तीस करोड़ रुद्र और ब्राह्मी आदि सात मातायें इनकी सेवा में लगी रहती हैं । शर्व भव रुद्र आदि आठ-आठ मूर्त्ति धारण कर यह उमानाथ भूमि आदि पाँच तथा सूर्य, चन्द्र यजमान इस प्रकार आठ मूर्त्ति की सृष्टि करते हैं । इसके ऊपर बारह सदाशिव स्थित हैं । उनके ऊपर महादेवाष्टक रहते हैं । इस प्रकार बुद्धितत्त्व में स्थित देवों का वर्णन इस पटल में किया गया है ।

बुद्धितत्त्व के ऊपर गुणतत्त्व है । इसमें गुरुओं की तीन पङ्क्तियाँ रहती हैं। प्रथम तमोगुणी पङ्क्ति बत्तीस रुद्रों वाली, द्वितीय रजोगुणी पङ्क्ति तीस रुद्रों वाली तथा तीसरी सत्त्वगुणी पङ्क्ति इक्कीस रुद्रों वाली है । गुणों के ऊपर प्रधानतत्त्व का आवरण है जिसमें आठ रुद्र रहते हैं । पुरुष तत्त्व में नव तुष्टियाँ और अष्ट सिद्धियाँ रहती हैं । इसके ऊपर सनत्कुमार गौतम आदि गुरु शिष्य की तीन पङ्क्तियाँ रहती हैं । गुरुओं की संख्या बाइस और शिष्यों की संख्या पच्चीस है। इनके अतिरिक्त इस पुरुष तत्त्व में नाड्यष्टक, विमुद्राष्टक, देहपाश अर्थात् दश धर्म और षोडश विकार भी रहते हैं जिनका शोधन करना चाहिये। इनके अतिरिक्त बुद्धि के धर्म आदि गुण, त्रिविध अहङ्कार, शब्द आदि पाँच विषय, काम, क्रोध आदि आगन्तुक विषयों का भी शोधन करना पड़ता है । आठ गणपाश और आठ विघ्नेश्वर पाश के साथ अनुक्त पाश भी शोध्य होते हैं ।

पुरुषतत्त्व के ऊपर नियति तत्त्व है । उसके अधिष्ठाता वामदेव आदि दश रुद्र हैं । इसके शोधन के साथ वर्तमान कालतत्त्व का भी शोधन करना पड़ता है । इसके नियन्त्रक शुद्ध, बुद्ध आदि दश शिव हैं । रागतत्त्व में कल्याण आदि पाँच गुरु रहते हैं । इसके ऊपर विद्यातत्त्व है । जिसमें स्थित भुवनों के अधिष्ठाता वाम ज्येष्ठ आदि हैं । इसी प्रकार ऊर्ध्ववर्त्ती कलातत्त्व में तीन

महादेव स्थित हैं । कलातत्त्व के ऊपर मायातत्त्व है । यह सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त कर स्थित है । इसमें गहनेश से अनन्त तक बारह रुद्र स्थित हैं। ये माया के अधो भाग मध्य भाग एवं ऊर्ध्व भाग में स्थित हैं । माया के ऊपर शुद्धविद्या है जिसमें गुरुशिष्यों की तीन पङ्क्तियों में ऋषिकुल विराजमान हैं ।

शुद्धविद्या के ऊपर शक्तिरूपी माया है (जब कि पूर्वोक्त मायाद्वय तत्त्वरूप और ग्रन्थिरूप हैं) । दीक्षा के द्वारा सर्वजीवविमोहिनी इसी माया शक्ति का भेदन होता है । इसके ऊपर महाविद्या तत्त्व है । यह सभी विद्याओं का मूल उत्स तथा संसार की सृष्टि-प्रलय का कारण है । इसमें दशहजार लाख परिवारों वाले सात करोड़ मन्त्र रहते हैं । इसके बाहर ईश्वर तत्त्व है । इसके अधिष्ठाता ईश्वर हैं जिन्होंने आठ विज्ञानकेवली या विद्येश्वरों की सृष्टि की । इनके असंख्यदलपद्म वाले आसन में साढ़े तीन करोड़ मन्त्र विराजमान हैं । ईश्वर की गोद में मायीयवर्ण रूपा मातृका या विद्या विराजमान है । ईश्वरतत्त्व में रूपावरण, नामक भुवन है जिसमें धर्म ज्ञान वैराग्य और ऐश्वर्य नामक रुद्र असंख्य परिवार के साथ रहते हैं । इसमें पन्द्रह भुवन हैं जिनको शरीर के अन्दर तालु के ऊपर स्थित समझना चाहिये । पन्द्रह भुवनों के अन्दर छोटे-छोटे भुवन हैं । कुल मिलाकर ये भुवन उनसठ हैं । इनका शोधन करना पड़ता है । ईश्वर तत्त्व के ऊपर सुशिवावरणतत्त्व है । उसमें सदाशिव रहते हैं। ये ओङ्कारेश आदि दश शिवों से आवृत हैं । ये भी अट्ठारह रुद्रों से आवृत हैं । इच्छाशक्ति इनकी अङ्कशायिनी है । सदाशिव का परिवार असंख्य है । ये सब मायाधर्म से शून्य निर्मलस्वान्त हैं ।

सदाशिव आवरण के ऊपर बिन्दु आवरण है । निवृत्ति आदि चार कलायें इसका परिवार हैं जब कि शान्त्यतीत ये स्वयं हैं । बिन्दु के ऊपर अर्धचन्द्र, उसके ऊपर रोधिनी स्थित है । शरीर के अन्दर १/८ वर्णमात्रा का इसका स्वरूप है । यह रोधिनी ब्रह्मा आदि को भी ऊपर जाने से रोक देती है । केवल सदाशिव ही इसका भेदन कर स्थित हैं । रोधिनी के ऊपर नाद तत्त्व है । यह समस्त नाड़ियों का आधार है । नाद के ऊपर ब्रह्मबिल है । जो एक अरब करोड़ रुद्रों से युक्त है । उसके अधिष्ठाता ब्रह्मा हैं । (ये ब्रह्मा ब्रह्माण्ड के ब्रह्मा से भिन्न हैं) इसकी शक्ति ब्रह्माणी है जो मोक्षमार्ग को अवरुद्ध कर स्थित है साथ ही मोक्षप्रदात्री भी है । विज्ञानभैरव में इसे 'शैवीमुख' कहा गया है । योगी इसका भेदन कर ऊपर जाता है ।

ब्रह्मबिल के ऊपर शक्ति है । यही कुण्डलिनी है । इसे ऊर्ध्वकुण्डलिनी कहते हैं । यह समस्त भुवनों का आधार है । इसमें स्थित देवतायें भी शक्ति नाम से जानी जाती हैं । इनके बीच में व्यापिनी शक्ति है और पूर्व आदि दिशाओं में अन्य शक्तियाँ रहती हैं । इसके ऊपर शिवतत्त्व है । इसमें भी

भुवन है । शिवतत्त्व के अधिष्ठाता शिव अनेक अरब करोड़ रुद्रों से परिवेष्टित हैं । शिवतत्त्व के शोधन के बाद योगी ऊपर की ओर समना तत्त्व में पहुँचता है । काल, क्रम और मन की स्थिति यहीं तक है । इसी से अधिष्ठित भगवान् शिव नीचे के पञ्चकारणों (= ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव) को नियन्त्रित करते हैं ।

इस समना शक्ति का ध्यान आवाहन पूजा करने के बाद वागीश्वरी का आवाहन आदि अनुष्ठित कर पशुयाग आदि करने चाहिये । फिर त्रितत्त्व का शोधन कर विश्लेष पाशच्छेद आदि करने के बाद साधक शिवकुम्भ, भैरवाग्नि की पूजा तथा पूर्णाहुति करे । समना के ऊपर उन्मना तत्त्व है जो कि गुरुवक्त्र या निर्वाण भी कहा जाता है । उन्मना के साथ योग होने पर योगी कारणातीत निरञ्जन व्योमातीत परमतत्त्व को प्राप्त कर लेता है । यही वास्तविक मुक्ति है ।

एकादश पटल

इस पटल का नाम 'सृष्टिसंहार' पटल हो सकता है । इसमें अध्वा की सृष्टि और उसके संहार का दिग्दर्शन है । सूक्ष्म स्वच्छन्दभैरव सृष्टि के निमित्त कारण हैं । बिना किसी कामना के वे अपने तेज से समनाशक्ति को क्षुब्ध कर लीलामात्र से सृष्टि करते हैं । समनाशक्ति रूप व्योम से शून्य, शून्य से **स्पर्श और उससे नाद उत्पन्न हुआ । यह नाद समस्त प्राणियों में सर्वदा स्थित और सर्वदा नदन करता रहता है । नाद से बिन्दु, बिन्दु से सदाशिव उत्पन्न** हुआ । मुद्रा मन्त्र क्रिया ज्ञान और इच्छा रूप भी वही सदाशिव है । वस्तुत: एक ही शिव समना और उन्मना रूप से पर और (मुद्रा आदि) अपर रूप में स्थित है । शक्ति, ब्रह्मबिल, सुषुम्ना, नादान्त और बिन्दु में भी वही व्याप्त है। दूसरे शब्दों में अनाश्रित अनाथ अनन्त व्योमरूपी और व्यापी शिव ही ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव के नाम से स्थित है । शक्ति के आधार हूहुक हैं । जल, अग्नि, वायु, नभस्, तन्मात्रायें, इन्द्रियाँ, विषय, मन, अहङ्कार, बुद्धि, गुण, प्रकृति, पुरुष, नियति, काल, राग, विद्या, कला, माया, शुद्धविद्या, ईश्वर, सदाशिव, बिन्दु, अर्धचन्द्र, रोधिनी, नाद, नाड़ी, अधो ब्रह्मबिल, शक्ति, व्यापिनी, समना और उन्मना इनमें पूर्व-पूर्व कार्य हैं और उत्तरोत्तर उनके कारण हैं ।

जिस प्रकार आत्मा अर्थात् अणु असंख्य हैं उसी प्रकार ब्रह्माण्ड और प्रकृत्यण्ड भी असंख्य हैं । किन्तु मायाण्ड और शाक्ताण्ड एक-एक हैं । पूर्व-पूर्व अण्ड व्याप्य और उत्तरोत्तर अण्ड व्यापक हैं । ब्रह्माण्ड पार्थिव तत्त्व है । उसके अधिष्ठाता ब्रह्मा हैं । जल के विष्णु तेज के रुद्र, वायु के ईश्वर **और आकाश में सदाशिव स्थित हैं । इसी प्रकार ब्रह्मा को सूर्य, विष्णु को**

सोम, रुद्र को ग्रहों का स्वामी, ईश्वर को नक्षत्रों का स्वामी और सदाशिव को यजमान कहा गया है । सद्योजात वामदेव अघोर तत्पुरुष और ईशान ये पञ्चवक्त्र भी क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव आदि हैं । उसी क्रम में सद्योजात आदि ऋग् यजुः साम अथर्व और सर्वविद्यात्मक हैं । लौकिक वैदिक आध्यात्मिक, अतिमार्ग (= सांख्य आदि) और मन्त्र भी इसी क्रम से निकले हैं । तत्त्वों का भी पाँच विभाग है— पृथिव्यादि प्रधानान्त के व्यापी ब्रह्मा हैं । इसी प्रकार पुरुष के विष्णु, नियति से माया तक के रुद्र, शुद्ध विद्या के ईश्वर और उसके ऊपरी तत्त्व के अधिष्ठाता सदाशिव हैं । इसी प्रकार त्रितत्त्व त्रिशक्ति आदि की दृष्टि से भी विश्व के अधिष्ठाताओं की चर्चा इस पटल में की गयी है ।

प्रस्तुत पटल में सृष्टि के एक और क्रम की चर्चा की गयी है । शिव से सदाशिव, उससे विद्या, विद्या से माया उत्पन्न हुई । परमेश्वर विद्या के द्वारा ज्ञानक्रियात्मक सात करोड़ मन्त्रों की सृष्टि करते हैं । ये मन्त्र पृथिवी से लेकर सदाशिव तत्त्व तक के अन्दर रहने वाले प्राणियों के ऊपर अनुग्रह करते रहते हैं । भगवान् अनन्तनाथ इच्छाशक्ति से युक्त ज्ञानशक्ति से समालोचन कर अपनी क्रियाशक्ति के द्वारा माया में आत्मवर्ग को स्थापित कर सबको एक साथ उसी प्रकार क्षुब्ध करते हैं जैसे बिना किसी लक्ष्य के बेर के पेड़ पर दण्ड फेंकने से बेर के फल एक साथ ऊपर-नीचे अगल-बगल गिरते हैं । जो जीव मुक्ति के पात्र होते हैं वे ऊपर चले जाते हैं और अपात्र जीव नीचे आ जाते हैं ।

माया से कला, विद्या, राग, काल और नियति कदम्ब पुष्प की भाँति एक साथ उत्पन्न होते हैं । पुरुष और प्रकृति भी माया के उत्पाद हैं । प्रकृति से गुण, गुणों से बुद्धि तत्त्व उत्पन्न हुये । इसी प्रसङ्ग में यहाँ भावभेदों का भी विस्तृत वर्णन है । लौकिक, पाञ्चरात्र, वैदिक, बौद्ध, जैन, सांख्य, योग, अतिमार्ग, कपालव्रती, पाशुपत मत की मोक्षविषयक दृष्टि की समीक्षा भी इस पटल में प्रस्तुत है । आगे चलकर बुद्धि से त्रिविध अहङ्कार, अहङ्कार से इन्द्रियाँ एवं पञ्चतन्मात्रायें और पञ्चतन्मात्राओं से पञ्चमहाभूतों की उत्पत्ति बतलायी गयी । इन तत्त्वों के उपस्कार की दृष्टि से आत्मा का अबुध, बुध आदि वर्गीकरण किया गया है । माया के पाँच कञ्चुकों से आवृत यह जीव त्रिगुण आदि बन्धनों से बद्ध होकर माया से लेकर पृथिवी तक के भुवनों में नाना योनियों में भ्रमण करता और विषयों का भोग करता हुआ धर्माधर्म बीज का सञ्चय करता रहता है । जीव के लिये प्रयुक्त पुरुष, भोक्ता, क्षेत्रज्ञ, बुध आदि पदों का स्वारस्य भी प्रस्तुत पटल में स्पष्ट किया गया है । आगे चलकर ग्यारह इन्द्रियों के ग्यारह प्रकार के असामर्थ्य, बुद्धि तथा अहङ्कार के

भेद, दश प्रकार के धर्म, ज्ञान के भेद वैराग्य, ऐश्वर्य, नव तुष्टि, अष्टसिद्धि, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और असिद्धि, अनैश्वर्य, जीवों में गुणत्रय की व्याप्ति बतलायी गयी है । लौकिक तार्किक आदि को नरक की प्राप्ति और पाशुपत तथा कौल को मोक्ष मिलता है—यह भी बतलाया गया और अन्त में कहा गया कि दीक्षा से बढ़कर मोक्ष, मातृका से श्रेष्ठ विद्या एवं अध्वप्रक्रिया से उत्तम ज्ञान नहीं है ।

संहारप्रक्रिया के वर्णन क्रम में पहले काल के सूक्ष्मतम अवयव क्षण से प्रारम्भ कर लव, निमेष, काष्ठा आदि की चर्चा की गयी है । दो अयनों का एक मानुषवर्ष होता है । एक मानुष वर्ष का देवताओं का एक दिन होता है। इस प्रकार मनुष्य के ३६० वर्षों का एक दिव्य (= देवताओं का) वर्ष होता है। १२००० दिव्य वर्षों का एक चतुर्युग होता है। इसमें ४००० दिव्य वर्ष सतयुग ३००० वर्ष त्रेता २००० वर्ष द्वापर और १००० दिव्य वर्ष कलियुग होता है । शेष दो हजार वर्ष चारो युगों का सन्धिकाल होता है जो कि आदि और अन्त में तत्तद् युगों का दशांश होता है । मानुष वर्ष के अनुसार एक चतुर्युगी का मान ४३२०००० वर्ष होता है । इकहत्तर चतुर्युगी का एक मन्वन्तर होता है । इस प्रकार चौदह मन्वन्तरों का एक कल्प होता है। यह ब्रह्मा का एक दिन होता है । इतनी ही बड़ी उनकी रात्रि भी होती है । एक मन्वन्तर बीतने पर और दूसरे मन्वन्तर का आरम्भ होने के बीच पाँच हजार दिव्य वर्ष का सन्धिकाल होता है । एक मन्वन्तर एक इन्द्र का शासनकाल होता है । इस प्रकार ब्रह्मा के एक दिन में चौदह इन्द्र शासन करते हैं ।

ब्रह्मा का दिन बीतने पर जब रात्रि का प्रारम्भ होता है तो यह प्रारम्भ सृष्टि के संहार का प्रारम्भ होता है । ब्रह्मा इस समय सो जाते हैं । इनके सोने पर कालाग्नि अपना नेत्र खोल कर ऊपर की ओर देखती है । इस निरीक्षण काल में उनके दक्षिण मुख से एक लाख योजन विस्तृत महाज्वाला निकल कर ऊपर की ओर बढ़ती है । उस समय ऊर्ध्वलोकस्थ प्राणियों के सुख-दुःख क्षीण हो जाते हैं फलतः वे मूढ़ होकर सुप्त हो जाते हैं और ब्रह्मलोक में सन्मात्र होकर पड़े रहते हैं लेकिन रुद्रलोक एवं पाताल लोक इस अग्निताप से अप्रभावित रहते हैं । जब समस्त लोक जीवशून्य हो जाता है तब वह ज्वाला पाताल नरक सहित भूर्भुवः स्वः लोकों को जला डालती है । फिर तेज हवायें चलती हैं और ब्रह्मा के स्वेद से उत्पन्न जल जगत् को समुद्र बना देता है ।

रात्रि बीत जाने पर ब्रह्मा पुनः पूर्व व्यवस्था के अनुसार छः प्रकार की सृष्टि करते हैं । जब-जब ब्रह्मा का दिनक्षय होता है तब तब सृष्टि का संहार होता है । इस प्रकार ब्रह्मा के एक-सौ वर्ष पूर्ण होने पर महाकल्प होता है ।

तब ब्रह्मा अपने से ऊर्ध्ववर्त्ती पर तत्त्व (= विष्णु) में लीन हो जाते हैं और यह महाप्रलय होता है। इस समय उस ब्रह्मा के द्वारा अधिष्ठित ब्रह्माण्ड नष्ट हो जाता है। यही पौराणिकों का प्रलय है। इससे आगे की स्थिति पर पुराण मौन है किन्तु आगम शास्त्रों में इसका वर्णन मिलता है। ब्रह्मा का एक-सौ वर्ष विष्णु का एक दिन होता है। इस मान से विष्णु एक-सौ वर्ष जीवित रहते हैं। उसके बाद वे अपने ऊर्ध्ववर्त्ती परतत्त्व अर्थात् रुद्र में लीन हो जाते हैं। विष्णु की आयु का एक-सौ वर्ष रुद्र का एक दिन होता है। इस दिन में रुद्र असंख्य ब्रह्मा-विष्णु की सृष्टि करते हैं। उनका एक-सौ वर्ष पूर्ण होने पर वे भी परतत्त्व में लीन हो जाते हैं। निष्कर्ष यह है कि परमेश्वर की ब्राह्मी वैष्णवी रौद्री शक्ति से अधिष्ठित होकर ही ये सब अपने-अपने लोकों के ऊपर शासन करते हैं। रुद्र के ऊपर शतरुद्रों का शासन है। रुद्रों का एक-सौ वर्ष शतरुद्रों का एक दिन होता है। शतरुद्रों का एक-सौ वर्ष पूर्ण होने पर ब्रह्माण्ड का नाश हो जाता है। यह पार्थिवाण्ड जलतत्त्व में विलीन हो जाता है और जल आदि क्रम से अपने-अपने कारणों में लीन हो जाते हैं। इस प्रकार काल जलतत्त्व से लेकर मायातत्त्व तक का संहार कर देता है। उसके ऊपर वर्तमान शुद्ध अध्वा का संहार अघोर करते हैं। इसी क्रम से सदाशिव का दिनक्षय होता है जो महाप्रलय कहलाता है। सदाशिव भी बिन्दु अर्धचन्द्र रोधिनी का भेदन कर नादतत्त्व में लीन हो जाते हैं। नाद ब्रह्मबिल का भेदन कर शक्ति में लीन हो जाता है। शक्ति के ऊपर परार्धकाल तत्त्व है जो शिवतत्त्व में स्थित व्यापीश का प्रातःकाल होता है। वह व्यापीश व्योमस्वरूप में, व्योम अनन्तेश में, अनन्तेश अनाश्रित में और वह अनाश्रय में अपने कालपरिमाण के अनुसार शासन करने के बाद लीन हो जाते हैं। यह अनाश्रय ही समना है उसके ऊपर काल नहीं है। जहाँ काल नहीं है वह उन्मना तत्त्व कहलाता है जो कि नित्योदित स्थिति है।

द्वादश पटल

इस पटल की संज्ञा 'तत्त्वविज्ञानाधिकार' पटल हो सकती है। पृथिवी से लेकर शिवपर्यन्त तत्त्वों के वर्णन—क्रम में पृथिवी को कठिनरूपा बतलाया गया है। इसमें पञ्चमहाभूतों के पाँचों गुण हैं। शरीर में मांस अस्थि आदि पार्थिवांश है। गन्ध को छोड़कर चार गुणों वाला जल, कफ, रक्त, मूत्र आदि के रूप में देह में विद्यमान है। आहार आदि के पाक तथा शारीर ऊष्मा के लिये त्रिगुणमय तेज देह में स्थित है। श्वास पश्वास मलमूत्रत्याग आदि के रूप में वायु दो गुणों वाला होकर स्थित है। शरीर में दो आँख, दो कान, एक मुख और मलमूत्र त्याग के अङ्ग इन नव छिद्रों के रूप में शब्द गुण वाला आकाश स्थित है। आगे कहा गया कि वाणी चार प्रकार की है।

इसके बाद पञ्च कर्मेन्द्रियों पञ्च ज्ञानेन्द्रियों के कार्यों को बतला कर वाणी, श्रोत्रेन्द्रिय के सात स्वर, उञ्छास सुरमण्डल को बतलाकर भेरी आदि के स्थूल शब्दों का वर्णन किया गया हैं। इसी प्रकार त्वक् चक्षु रसना और घ्राणेन्द्रियों के विषय या कार्य बतलाये गये हैं। तत्पश्चात् मन त्रिविध अहङ्कार और बुद्धि की देह में स्थिति बतलायी गयी है। धर्म आदि आठ बुद्धि के गुण हैं। इनमें से धर्म वैराग्य ऐश्वर्य अधर्म अज्ञान अवैराग्य और अनैश्वर्य ये मनुष्य को बन्धन में डालते हैं। ज्ञान बन्धन से मुक्ति दिलाता है। आगे चलकर प्रकृति के तीन गुणों के धर्मों को बतलाकर कहा गया कि चूँकि तीनों गुणों के चिह्न मनुष्य में दिखलायी पड़ते हैं अतः मनुष्य त्रिगुणमय कहा जाता है। प्रकृति कर्त्री है। पुरुष अकर्त्ता है। इसी प्रकार का वर्णन कर सांख्यज्ञान की चर्चा की गयी है अर्थात् प्रकृति के स्वभाव को सम्यक् जानने वाला प्राकृत गुणों के बन्धन से मुक्त हो जाता है यद्यपि सांख्यदर्शन के अनुसार यही मुक्ति है किन्तु आगम की दृष्टि से यह वास्तविक मुक्ति नहीं है।

शरीर की तत्तत् इन्द्रियों एवं मन में पृथिवी से प्रकृतितत्त्व तक का ध्यान करने वाला पुरुष सिद्ध हो जाता है। इसे प्राकृतयोग कहा गया है जो कि मोक्षमार्ग पर ले जाता है। पुरुष का ध्यान चित्स्वरूप, पद्म के मध्य में स्थित, समस्त शरीर में व्याप्त के रूप में करना होता है। इस पटल में आगे जीव के स्वरूप का वर्णन कर तत्पश्चात् माया के पाँच कञ्चुकों का ध्यान करने को कहा गया है। इससे अनेक प्रकार की सिद्धि प्राप्त होती है। निर्वैरपरिपन्थिनी माया और चतुर्वर्णा शुद्धविद्या का ध्यान करने वाला योगी सर्वज्ञ, कामरूपी तथा नानासिद्धिसमन्वित होता है। इसके बाद ईश्वर के पञ्चवक्त्र के ध्यान का फल बतलाते हुए सदाशिव के ध्यान का फल कहा गया है।

सदाशिव के ध्यान के बाद बिन्दु, शक्ति, व्यापिनी, समना और उन्मना के ध्यान से अनेक सिद्धियाँ मिलती हैं—यह कहा गया। इसके उपरान्त शिव का ध्यान करना चाहिये। शिव का ध्यान करने से योगी शिवधर्मों से मुक्त होकर शिवतुल्य हुआ सिद्ध और मुक्त हो जाता है।

त्रयोदश पटल

इस पटल को 'स्वच्छन्दयागाधिकार' पटल कहा जा सकता है। याग के सन्दर्भ में मूलबीजाक्षर का स्वरूप बतलाया गया तथा कहा गया कि प्रणवासन पर आरूढ परमेश्वर की पूजा करनी चाहिये। शिवधर्मीसाधकदीक्षा-दीक्षित व्यक्ति दश लाख जप और नरमांस का एक लाख होम करने पर असाध्य को सिद्ध कर लेता है। कारिकाकोश नाम से वशीकरण के अनेक

प्रकार के अनुष्ठान यहाँ बतलाये गये हैं । वशीकरण के साथ-साथ स्तम्भन, उन्मादन, प्रत्यानयन, आकर्षण के अनेक प्रयोगों की भी चर्चा इस पटल में है। इन अनुष्ठानों को दीक्षित व्यक्ति ही कर सकता है साधारण मनुष्यः नहीं ।

चतुर्दश पटल

चतुर्दश पटल 'मुद्राधिकार' पटल के नाम से व्यवहृत किया जा सकता है। इस पटल में कपाल, खट्वाङ्ग, खड्ग, स्फर, अङ्कुश, पाश, नाराच, पिनाक, अभय, वरद, घण्टा, त्रिशूल, दण्ड, वज्र, मुद्गर, वल्लकी, परशु मुद्राओं के स्वरूप का वर्णन करने के बाद इनके मानस रूप को बतलाया गया है । कोई मुद्रा धवल, कोई मरकत, कोई नीलमणि, कोई स्वर्णिम आदि रूपों वाली है । ये मुद्रायें भगवान् स्वच्छन्द भैरव की प्रतिरूप हैं । इनके कायिक, वाचिक एवं मानसिक तीन रूप हैं । पहले कायिक रूप का, फिर धवल आदि मानसिक रूप का वर्णन कर इनके वाचिक रूप को बतलाते हुए कहा गया कि पहले प्रणव, तत्पश्चात् मुद्रा का नाम, फिर 'नमः' जोड़ने से इनका वाचिक रूप निष्पन्न होता है । ये मुद्रायें निर्विघ्नकरण और साध्य की सिद्धि देने वाली हैं ।

पञ्चदश पटल

यह 'छुम्मकाधिकार' पटल है । इसमें छुम्मका (= पारिभाषिक शब्दों) को बतलाया गया है । उदाहरण के लिये भैरव को धाम, साधक को गिरि, पुत्रक को विमल, मद्य को हर्षण, लिङ्ग को सन्तोषजनन, भग को प्रीतिवर्धन आदि के नाम से जानना चाहिये ।

तीव्र शक्तिपात के कारण मेलक के सम्पन्न होने पर देवियाँ साधक को भिन्न-भिन्न तत्त्वों के साक्षात्कार के लिये सङ्केत करती है जैसे जो देवी शिखा का स्पर्श करे वह साधक को शक्ति की सिद्धि बतलाती है । इसी प्रकार शिर, ललाट, तालु आदि के प्रदर्शन के द्वारा साधक को बिन्दु ईश्वर, रुद्र आदि की सिद्धि का सङ्केत प्राप्त होता है । सम्पूर्ण शरीर के प्रदर्शन से महाध्वा की सिद्धि का सङ्केत मिलता है । ये देवियाँ वीराचारी साधक को चरु देती हैं जिसके भक्षण से साधन भैरवतुल्य हो जाता है ।

विषयानुक्रमणिका

आदि, मण्डल में प्रवेश, अनन्त के लिये आसन, नाडीसन्धान, तर्पण, पूर्णाहुति, शिष्यदेह में सकलीकरण से लेकर योजनिका दीक्षापर्यन्त अध्वशुद्धि हेतु भगवान् स्वच्छन् से प्रार्थना, दीक्षा कर्म का प्रारम्भ, पुष्पपात के आधार पर नामकरण, प्रदक्षिणा हवन आदि, द्विजत्वसिद्धि, रुद्रांशत्वसिद्धि, प्राशविच्छेदकारक सूक्ष्मविधान, साधक की दीक्षा की वासना के भेद से शिष्य के भेद, पुत्रक दीक्षा, होम, षडध्वा का व्याप्यव्यापक सम्बन्ध, कला दीक्षा में शेष अध्वाओं का कलाओं में अन्तर्भाव, कलादीक्षाविधि, अध्वन्यास, निवृत्तिकला की व्याप्ति, वागीशी योजन, इक्कीस संस्कार, अधिकार-भोग-लय नामक तीन संस्कार, अँड़तालिस संस्कार, रुद्रांश की सिद्धि, निष्कृति का स्वरूप, पाशच्छेद, शिवधर्मिणी और लोकधर्मिणी दीक्षा, सबीज और निर्बीज निर्वाण दीक्षा, मन्त्रों की अचिन्त्यशक्ति, विविधकला सन्धान, प्रतिष्ठाकला की व्याप्ति, विद्या कला की व्याप्ति, शान्त्यतीता कला की व्याप्ति, षडध्वशुद्धिप्रकरण का उपसंहार, क्षमापन आदि, तत्त्वत्रय शुद्धि, शिखाच्छेदन, शिखा होम, योजनीय प्रयोग, चारप्रमाण, प्राणसञ्चार, षडध्वविभाग, कलाध्वा और वर्णाध्वा, पदाध्वा और मन्त्राध्वा, मन्त्रैकादशिका और पदैकादशिका, हंसोच्चार, कारण का त्याग, काल का त्याग, शून्य की भावना, सामरस्य, सप्तविषुवत्, पदार्थभेदन, आगम का लक्षण, मात्रा की संख्या, मात्रा का योग और मात्रा का माण, मन्त्र मुद्रा और भाव, करण का लक्षण, विविध शब्दों का अनुभव, आत्मा की व्याप्ति, शिव की व्याप्ति, परा विद्या, तत्त्व की व्याप्ति, आचार्य की महिमा, पूर्णाहुतिप्रयोग, छह कारणों के त्याग से सप्तम में लय, सर्वज्ञता आदि गुणों की प्राप्ति, अभिषेक, अधिकार की कल्पना, अभिषेकाङ्गमन्त्र का तर्पण, भूतिदीक्षा, विद्या दीक्षा, दीक्षा के अन्त में आत्मयाग, सूक्ष्मदीक्षा, क्षमापन, विसर्जनविधि, गुरु की पूजा, साधकों की एक ही भैरवीय जाति ।

तत्त्व दीक्षा और उसके भेद, पददीक्षा, वर्ण मन्त्र और भुवन की दीक्षा, समय को शिष्य को सुनाना, विज्ञान दीक्षा, पाँच उद्घात, पञ्चतत्त्व शुद्धि, समनापर्यन्तपद का शोधन, परतत्त्वयोजन, कारण दीक्षा, व्याख्या विषय में दीक्षा विषयक बौद्ध खेटपाल कैरण व्याख्याताओं की आलोचना ।

समयी साधक को उपलब्ध विविध सिद्धियाँ, भैरवपूजन, बहुरूप मन्त्र का जप, पञ्चप्रणवोपदेश, भगवान् का सकल निष्कल रूप, मन्त्रशक्ति का अनुभव, हंस का तीन प्रकार का उच्चार, मन्त्र की महिमा, जप और होम, होम के द्रव्य, वशीकरण, उच्चाटन, विद्वेषण, सुभगीकरण, आकर्षण, मारण, जातिप्रयोग ।

सङ्केत सूची

ई०प्र०	—	ईश्वरप्रत्यभिज्ञा
ई०प्र०वि०वि०	—	ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिनी
ऋ०	—	ऋग्वेद
कालो०	—	कालोत्तरतन्त्र
किरणा०	—	किरणावली
कि०	—	किरणावली
क्रि०	—	क्रियापाद (मृगेन्द्रतन्त्र)
त०त्र०नि०का०	—	तत्त्वत्रयनिर्णयकारिका
त०सं०	—	तत्त्वसंग्रह
तं०आ०	—	तन्त्रालोक
तं०सां०, आ०	—	तन्त्रसार, आह्निक
न्या०सू०	—	न्यायसूत्र
पात०	—	पातञ्जलयोगसूत्र
प्र०वा०	—	प्रमाणवार्त्तिक
बृ०उ०	—	बृहदारण्यक उपनिषद्
भ०गी०	—	श्रीमद्भगवद् गीता
मा०वि०	—	मालिनीविजयतन्त्र
मा०वि०तं०	—	मालिनीविजयतन्त्र
यो०सू०	—	योगसूत्र
वाम०स०	—	वामनसंहिता
वि०भै०	—	विज्ञानभैरव
शि०दृ०	—	शिवदृष्टि
शि०सू०	—	शिवसूत्रम्
श्वे०उ०	—	श्वेताश्वतर उपनिषद्
सू०जा०	—	सूर्यजातक
सा०का०	—	सांख्यकारिका
स्तोत्राव०	—	स्तोत्रावली
स्प०	—	स्पन्दकारिका
स्व०तं०	—	स्वच्छन्दतन्त्र

॥ श्रीः ॥

विद्याभवन प्राच्यविद्या ग्रन्थमाला
१५५

स्वच्छन्दतन्त्रम्

(द्वितीयो भागः)

(७-१५ पटलानि)

श्रीमहामाहेश्वराचार्यवर्यश्रीक्षेमराजविरचितस्वच्छन्दोद्योताख्य-
व्याख्यानेनज्ञानवतीहिन्दीभाष्येण च विभूषितम्

व्याख्याकारः सम्पादकश्च
आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदी
व्याकरणाचार्यः
एम० ए० (संस्कृत), पी-एच्०डी०, लब्धस्वर्णपदकः
शास्त्रचूडामणि विद्वान्
संस्कृतविभागः, कलासङ्कायः,
काशीहिन्दूविश्वविद्यालयः, वाराणसी

चौखम्बा विद्याभवन
वाराणसी

विषयानुक्रमणिका